पूज्य लालचंदभाई के प्रवचन
श्री समयसार गाथा १३०-१३१
तत्त्वचर्चा - प्रश्नोत्तरी
दीवानपरा-राजकोट, प्रवचन LA०७८

(व्यवहार की रुचिवाले जीव) समाज में बहुत हैं, बहुत से बहुत हैं; और निश्चय की रुचिवाले जीव हमेशा, तीनों काल कम रहते हैं। दो प्रकार के जीव हैं - व्यवहार की रुचिवाले और निश्चय की रुचिवाले। निश्चय की रुचिवाले जीव बहुत कम रहते हैं। क्या करें? निश्चय की रुचिवाला (आत्मा को) प्राप्त करता है, व्यवहार की रुचिवाला प्राप्त नहीं करता है।

मुमुक्षु: निश्चय की रुचि माने क्या?

पू. लालचंदभाई: निश्चय की रुचि माने परिणाम मात्र से मेरा आत्मा भिन्न है। इसलिए मैं परिणाम का करनेवाला नहीं हूँ - मैं कर्ता नहीं हूँ। ऐसा निश्चय की रुचिवाला निश्चय में आ जाता है।

दूसरा निश्चय का एक पाठ और है। बाद में वो आगे बढ़ता है, निश्चय की रुचिवाला। ये जो परिणाम से मेरा आत्मा भिन्न है तो परिणाम को जानने से भगवान आत्मा जानने में नहीं आता है, तो परिणाम को जानने की जो रुचि है वो छोड़ देता है। व्यवहार की रुचि छूटी, जानने की रुचि छूटी तो भगवान आत्मा उसको जणित (जानने में आ) जाता है। निश्चय की रुचिवाला यहाँ (अंदर) आता है, परिणाम मात्र से मेरा आत्मा भिन्न है। ऐसे परिणाम करने से, कर्ताबुद्धि रखने से आत्मा दृष्टि में नहीं आता है; और परिणाम को जानने में रुक जाऊँ तो भी दृष्टि का विषय दृष्टि में, ज्ञान में, अनुभव में नहीं आता है।

वह बात सुनकर वो निश्चय की रुचिवाला उन दोनों भावों का त्याग कर देता है दृष्टि में से। परिणाम का त्याग नहीं होता है, परिणाम के कर्तृत्व का त्याग होता है। परिणाम का त्याग नहीं होता है, परिणाम ज्ञेय बनता था, वो उसको ज्ञेय बनाना छोड़ दिया और ज्ञायक को ज्ञेय बनाया तो उसका नाम निश्चय की रुचिवाला कहा जाता है। और निश्चय की रुचि जिसको है उसको आत्म-अनुभव का अवकाश है, पूरा। अवकाश समझे ना? chance (अवसर) है। और व्यवहार की रुचिवाले जीव को chance नहीं है।

मैं परिणाम से सहित हूँ इसलिए मैं परिणाम का करनेवाला हूँ; और दूसरा परिणाम को जाननेवाला हूँ। समझे? वो सब व्यवहार की रुचिवाले का पक्ष है, वो परिणाम मात्र से भिन्न ज्ञानानंद परमात्मा पूर्णानंद आत्मा है (वह) उसको दृष्टि में, ज्ञान में, अनुभव में नहीं आता है। उसको दृष्टि में परिणाम दिखता है, परिणाम को ही आत्मा मानता है अनंतकाल से। मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ यह दृष्टि में त्याग कर, धर्म का त्याग कर, धर्मी को छोड़कर धर्म का त्याग कर परिणाम मात्र जो रागादि उत्पन्न होता है, पुण्यभाव, वो मेरा है - ऐसा मानता है वो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है।

वो आस्रव में अजीव तत्त्व का, अजीव में जीव की मान्यता कर लेता है। आत्मा की रुचि होती है

तो पुण्य और पुण्य के फल की रुचि छूट जाती है। पुण्य नहीं छूटता है, पुण्य का फल नहीं छूटता है, उसकी रुचि छूट जाती है। महिमा छूटती है, पुण्य की महिमा छूट जाती है, पुण्य का फल जो है उसकी माहिमा नहीं आती है; महिमा आत्मा की आती है। जब आत्मा की महिमा आई तो समझो कि निश्चय की रुचिवाले हो।

भले! बाहर में चाहे तो कितना भी वैभव हो, बड़ा बंगला हो आठ मंजिल का, परंतु रुचि नहीं हो, वो मेरा नहीं है। मेरा तो एक ज्ञानमय आत्मा है, बस। बंगले को वो दान में नहीं देता है। बंगले का दान नहीं करता है मगर बंगला मेरा नहीं है, ममत्व छूट जाता है, बंगला रह जाता है। बंगला बंगले में रह गया और ज्ञान आत्मा में आ गया। ऐसी स्थिति गृहस्थ की - ज्ञानी की होती है।

मुमुक्षु: बंगला नड़े (बाधा डाले) तो दान में दे ना? नड़ता ही कहाँ है?

पू. लालचंदभाई: नड़ता कहाँ है? वो तो पर है, भिन्न है।

मुमुक्षु: दान में नहीं दे सकता। उसका हो तो दान में दे न?

पू. लालचंदभाई: हाँ! उसका है ही नहीं। दान कहाँ से दे देवे? उसका स्वामी तो पुद्गल है।

मुमुक्षु: पुद्गल है उसका स्वामी तो।

पू. लालचंदभाई: पुद्गल कहता है कि मेरी चीज है और तू दान करता है?

मुमुक्षु: हाँ! यह तो पाप हो गया। ये तो मेरी चीज को दान में देता है।

पू. लालचंदभाई: दान में दे सकता है? कोई नहीं दे सकता। ऐसी अलौकिक चीज गुरुदेव ने बताई है। आहाहा! जिसको निश्चय की रुचि होगी उसको प्राप्त होगा। व्यवहार की रुचिवाला ...। आहाहा!

ऐसा देवचंदजी एक हो गए, श्वेताम्बर में साधु। एक (बात) गुरुदेव बहुत कहते थे बारम्बार कि व्यवहार की रुचिवाले जीवड़ा, उपदेशक भी ऐसे मिले, क्या करे जीव नवीन? क्या करे जीव नवीन? व्यवहार की रुचि है और उपदेशक भी ऐसा ही मिलता है, तो क्या करे नवीन वो? नवीन तो उसके पास है नहीं कुछ। जैसी रुचि थी, ऐसा उपदेशक मिला। 'हाँ! बराबर है! ऐसे क्रिया करना चाहिए, ऐसा नहीं (किया) तो निश्चयाभासी हो जाएगा, शुभभाव करते-करते धर्म होता है' - ऐसे-ऐसे हाँ में हाँ मिलाते हैं - अज्ञानी जीव हाँ में हाँ मिला देता है।

अभी शुभ-अशुभ भाव से भिन्न परमानन्द आत्मा है। आहाहा! वो मेरी चीज है। उसका लक्ष, अनुभव करने से धर्म की शुरुआत होती है। आत्मा ज्ञानमयी है, रागमयी नहीं है। **'घी का घड़ा' है** (समयसार गाथा ६७) - घी का घड़ा होता ही नहीं है। घड़ा मिट्टी का होता है। ऐसे आत्मा तीनों काल ज्ञानमयी ही है। रागमयी होता ही नहीं है। यदि घड़ा घीमय होवे तो जीव रागमय हो जावे। मिट्टी का घड़ा तीन काल में घीमय होता नहीं है। घी भिन्न है और मिट्टी का घड़ा भिन्न है; ऐसे ज्ञान भिन्न है, राग भिन्न है। राग और ज्ञान एक चीज नहीं है। ज्ञान में राग नहीं है और राग में ज्ञान नहीं है; ऐसे अस्ति-नास्ति अनेकांत है। ज्ञान है, ज्ञानमयी आत्मा। ज्ञान में राग नहीं है और राग में ज्ञान नहीं है। दर्पण में मोर नहीं है और मोर में दर्पण नहीं है।

स्फटिक मणि में फूल की लालाश नहीं है और लालाश में, फूल की लालाश में स्फटिक मणि

नहीं है। एक में दूसरे का अभाव है। ऐसे स्वच्छ उपयोग में देहादि, रागादि जणित (जानने में आ) जाता है, मगर वो उपयोग में आता नहीं है। दर्पण में अग्नि आती नहीं है, अग्नि तो बाहर रहती है। अग्नि दर्पण में कहाँ घुस जाती है? ऐसे बार-बार आत्मा और आस्रव का भेदज्ञान करने से, आस्रव में आत्मबुद्धि छूट जाती है। आस्रव सर्वथा नहीं छूटता है, आस्रव रह जाता है मगर आस्रव में आत्मबुद्धिरूप मिथ्यात्व-अज्ञान छूट जाता है। बाद में आस्रव का वो ज्ञाता हो जाता है, स्वामी नहीं बनता है। थोड़ा अस्थिरता का राग साधक को आता है, वो व्यवहारनय से जीव का परिणाम कहा जाता है; मगर निश्चयनय से पुद्गल का जिसने मान लिया, उसको नींद में भी 'राग मेरा है' ऐसा नहीं (आता) है।

मुमुक्षु: गाथा १३०-१३१।

पू. लालचंदभाई: १३०-१३१।

टीका:- जैसे पुद्गल स्वयं परिणामस्वभावी होने पर भी, सोना हो या लोहा हो, वो दोनों जाति पुद्गल की है। जाति सामान्य - पुद्गल अपेक्षा से एक जाति है। विशेष अपेक्षा से सोना और लोहा - वो विशेष है, भेद है उसका। अभी सामान्य से दोनों ही पुद्गल हैं। ऐसे **जैसे पुद्गल स्वयं** अपने आप **परिणामस्वभावी होने पर भी,** पुद्गल को कोई परिणमाता नहीं है, स्वयं परिणमन उसका स्वभाव है, स्वभाव से परिणमता है।

कारण जैसे कार्य होनेसे, सुवर्णमय भावमेंसे सुवर्णजातिका उल्लंघन न करते हुए सुवर्णमय कुण्डल आदि भाव ही होते हैं किन्तु लौहमय कड़ा इत्यादि भाव नहीं होते; ऐसा कहते हैं कि पुद्गल स्वयं, अपने आप परिणमन स्वभाववाला होने से स्वर्ण जातिरूप उसका परिणमन हो गया। स्वर्ण बन गया (वो)। पुद्गल तो रहा, पुद्गल मिटकर चेतन नहीं हुआ मगर पुद्गल की एक अवस्था स्वर्णमयी हो गई। वो स्वर्ण है, वो उसकी अवस्था है। पुद्गल द्रव्य है। पुद्गल जाति द्रव्य है। उसका एक परिणाम स्वर्ण जाति का बन गया। और वो स्वर्ण जाति का बन गया तो स्वर्णमय भाव में से स्वर्ण ही निकलता है। लोहे का कोई जेवर नहीं बनता है उसमें से।

तो उसके दो अर्थ निकल सकते हैं। एक तो जो सोना बन गया, सोने का जो परिणाम हुआ, तो कारण जैसा कार्य; तो पुद्गल जाति - द्रव्य कारण और उसकी पर्याय कार्य। ऐसे प्रमाणज्ञान से लेवें तो ऐसा ले सकते हैं मगर उसमें विरोध आता है। इसलिए स्वर्ण जो जाति बनी उसमें स्वर्ण की ही पर्याय उत्पन्न होती है क्योंकि सामान्य तो एकरूप है - पुद्गल। और उसके दो भेद हैं - एक स्वर्ण और एक लोहा। तो ये यदि पुद्गल को कारण मानो तो उन दोनों में समान पर्याय होनी चाहिए। परंतु दो पर्याय तो समान होती नहीं हैं तो कारण-कार्य स्वर्ण का स्वर्ण में है।

मुमुक्षु: पर्याय तो पर्याय में ही है।

पू. लालचंदभाई: पर्याय में पर्याय का कारण है; सामान्य पुद्गल नहीं है। तो भी, तो भी स्वर्ण को द्रव्य कह सकते हैं और स्वर्ण के परिणाम, उसको पर्याय कह सकते हैं। स्वर्ण को द्रव्य कहो और उसका परिणाम स्वर्णमयी है - ऐसा भी कह सकते हैं। बाकी सचमुच तो सामान्य पुद्गल को जुदा लो तो उस पर्याय का कारण पर्याय है। नहीं तो लागू नहीं पड़े, लोहे में।

लोहा और स्वर्ण पुद्गल की जाति होने पर भी स्वर्ण-पर्याय में से स्वर्ण होता है और लोहे की

पर्याय में से लोहा। ऐसे ज्ञानमयी आत्मा, जो ज्ञानी है उसका ज्ञानमयी परिणाम है और अज्ञानी के सभी परिणाम अज्ञानमयी हैं। तो ज्ञानी और अज्ञानी वो तो पर्याय विशेष हो गया उसका। दोनों में सामान्य तो एक समान है, विशेष में फ़र्क़ है। तो जो कारण आप सामान्य को लो तो दो सत्ता नहीं हैं। इसलिए अज्ञानमय परिणाम में से अज्ञान होता है और ज्ञानमय परिणाम में से ज्ञानमयी भाव होता है। ऐसा पर्याय का कारण पर्याय (है), कारण जैसा कार्य। तो कारण पर्याय को लो तो ही कार्य सिद्ध होता है। यदि कारण त्रिकाली द्रव्य को लो, आत्मा को, तो वो सिद्ध नहीं होता है। तो एक अज्ञानरूप से परिणमे और एक ज्ञानरूप से परिणमे ऐसे अलग नहीं आता है; एक समान दोनों का परिणमन होना चाहिए।

मुमुक्षु: या तो फिर ज्ञान-ज्ञान ही आना चाहिए, या फिर अज्ञान-अज्ञान-अज्ञान ही आना चाहिए।

पू. लालचंदभाई: आना चाहिए!

मुमुक्षु: वो तो होता नहीं है।

पू. लालचंदभाई: वो तो, ऐसा होता नहीं है। **और लौहमय भावमेंसे, लौहजातिका उल्लंघन न करते हुए लौहमय कड़ा इत्यादि भाव ही होते हैं, किन्तु सुवर्णमय कुण्डल आदि भाव नहीं होते; इसीप्रकार जीव स्वयं परिणामस्वभावी होने पर भी, कारण जैसे ही कार्य होनेसे, कारणानुविधायीनि कार्याणी** (समयसार गाथा ६८ संस्कृत आत्मख्याति टीका)। जब जड़ सिद्ध करना हो, जड़, तो जड़ का परिणाम जड़ में होता है; अभी स्वर्ण और लोहे को छोड़ दो। पुद्गल जड़ है कि नहीं? तो जड़ का परिणाम जड़ रूप। सोने की पर्याय भी जड़ और लोहे की पर्याय भी जड़। दो कारण कार्य घटते हैं, त्रिकाली द्रव्य के साथ। जब जड़ लेना है; पुद्गल सामान्य जड़ और उसका परिणाम भी जड़।

जड़ भावे जड़ परिणमे, चेतन चेतन भाव (श्रीमद् राजचंद्र राजपद - पद २८)।

तो वहाँ द्रव्य के साथ पर्याय ले सकते हैं, जड़ का परिणाम जड़रूप। मगर इधर ज्ञानी-अज्ञानी के दो भेद करने हैं; इसलिए सामान्य को गौण करके विशेष में जो सम्यग्ज्ञान हुआ तो सम्यग्ज्ञानी के सब परिणाम सम्यग्ज्ञानरूप होते हैं; अज्ञानी के सब परिणाम अज्ञानरूप होते हैं। तो कारण जैसा कार्य। त्रिकाली द्रव्य के साथ कारण-कार्य नहीं घटता। समझे? **इसीप्रकार जीव स्वयं परिणामस्वभावी होने पर भी, कारण जैसे ही कार्य होनेसे, अज्ञानीके - जो कि स्वयं अज्ञानमय भाव है**, जो अज्ञानमय भाव हैं वे कारण हैं और अज्ञान भाव उसका कार्य है।

मुमुक्षु: इसका क्या मतलब? खुलासा (करें) जरा।

पू. लालचंदभाई: इसका मतलब ये कि त्रिकाली जो स्वभाव है, कारण नहीं है। अज्ञान की पर्याय का कारण, अज्ञान की पर्याय का कारण ज्ञायक को बना दो, तो नित्य अज्ञानरूप परिणमता है, तो ज्ञानरूप परिणम सकता नहीं; ऐसा तो होता नहीं है। सामान्य को सुरक्षित रखकर विशेष अपेक्षा से कारण-कार्य लगाओ तो घट सकता है; नहीं तो नहीं।

अज्ञानीके - जो कि स्वयं अज्ञानमय भाव है उसके - अज्ञानमय भावमेंसे, अज्ञानजातिका उल्लंघन न करते हुए अनेक प्रकारके अज्ञानमय भाव ही होते हैं किन्तु ज्ञानमय भाव नहीं होते, तथा ज्ञानीके - जो कि स्वयं ज्ञानमय भाव हैं उसके - ज्ञानमय भावमेंसे, ज्ञानकी जातिका

उल्लंघन न करते हुए समस्त ज्ञानमय भाव ही होते हैं किन्तु अज्ञानमय भाव नहीं होते।

भावार्थ:- 'जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य होता है' इस न्यायसे जैसे लोहेमेंसे लौहमय कड़ा इत्यादि वस्तुएँ होती हैं और सुवर्णमेंसे सुवर्णमय आभूषण होते हैं, इसी प्रकार अज्ञानी स्वयं अज्ञानमय भाव होनेसे उसके (अज्ञानमय भावमेंसे) अज्ञानमय भाव ही होते हैं और ज्ञानी स्वयं ज्ञानमय भाव होनेसे उसके (ज्ञानमय भावमेंसे) ज्ञानमय भाव ही होते हैं। नहीं तो सामान्य-विशेष एक हो जाता है; सामान्य-विशेष एक होने पर वो दो बातें घटती नहीं हैं। सामान्य से विशेष जुदा है। विशेष कारण और विशेष पर्याय कार्य - तो बैठता है, नहीं तो बैठ नहीं सकता। बाकी हाँ! स्थूल अपेक्षा से स्वर्ण को इधर द्रव्य कहा और लोहे को भी इधर द्रव्य कहा। ऐसा अर्थ घट सकता है। जो हमने पर्याय में उतारा ना कारण-कार्य, तो वहाँ कारण-कार्य; सोना द्रव्य - सोना है उसको द्रव्य लेना, पर्याय नहीं लेना; पर्याय कुंडल आदि की पर्याय लेना; तो द्रव्य जैसा है वैसी पर्याय होगी - ऐसा हो सकता है। लोहे को, लोहे को द्रव्य बनाओ, लोहा - तो उसकी पर्याय जो होती है, तो वो उसकी पर्याय है - ऐसा कह सकते हैं। मगर सचमुच तो पुद्गल द्रव्य स्वयं परिणमन स्वभावी होने पर भी - यह main (मुख्य) बात है। इसलिए सामान्य को अलग रखो तो ही पर्याय में कारण-कार्य घटित होता है। अगर आप मूल पदार्थ को कारण कहो तो कारण एक और कार्य में दो प्रकार आए। कारण तो एक रखा ना ज्ञायकभाव। दोनों में सामान्य समान है और दोनों का विशेष फ़र्कवाला है। तो अगर सामान्य को कारण कहो आप, तो कार्य एक प्रकार का आना चाहिए; या तो सब ज्ञानी हों या तो सब अज्ञानी हों। समझ में आया कुछ?

मुमुक्षु: मुझे ये लगा कि वो जो पर्याय है, पर्याय सामान्य से भिन्न ही है। पर्याय को अगर सामान्य के साथ लगाओगे तो वो सही ...

पू. लालचंदभाई: तो वो घट नहीं सकता है क्योंकि सामान्य तो शुद्ध है। और शुद्ध है तो सबके जीव के पर्याय शुद्ध होनी चाहिए। किसी को शुद्ध और किसी को अशुद्ध, ज्ञानी ... क्रिया का भेद नहीं होता है। बाकी शुद्धात्मा जो है सामान्य, वो कारण नहीं है; शुद्ध पर्याय का कारण नहीं है और अशुद्ध पर्याय का भी कारण नहीं है, सामान्य।

पर्याय का कारण पर्याय है। क्योंकि कथंचित् भिन्न है, सामान्य से पर्याय कथंचित् भिन्न है। दृष्टि अपेक्षा से सर्वथा भिन्न है और ज्ञान अपेक्षा से कथंचित् भिन्न-अभिन्न है। उसमें भी ऐसा रहस्य है।

मुमुक्षु: ३२० वीं गाथा में जयसेन आचार्य की टीका में गुरुदेव ने बहुत स्पष्ट किया है। बहुत स्पष्ट किया है पर्याय के, द्रव्य और पर्याय की, मतलब practical (प्रायोगिक) इतना है कि हम कथंचित् भिन्न, कथंचित् अभिन्न, सर्वथा भिन्न, सर्वथा अभिन्न ऐसा उसमें द्रव्य-पर्याय का ही खेल है। जहाँ धर्म क्रिया है, पर्याय और द्रव्य ही है। दूसरी, कोई तीसरी वस्तु नहीं है।

पू. लालचंदभाई: (हाँ, कोई तीसरी वस्तु) नहीं।

मुमुक्षु: यह स्पष्टीकरण हो जाता है तो निर्णय हो जाता है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! यही समझने जैसा; इतना ही है द्रव्य-पर्याय। सर्वथा भिन्न है, कथंचित् भिन्न-अभिन्न है, कि क्या है? वो समझने जैसी बात इतनी ही है। बस! जैनदर्शन का सार सर्वथा भिन्न,

कथंचित् भिन्न-अभिन्न। ज्ञान अपेक्षा से सर्वथा नहीं आता है, ज्ञान अपेक्षा से कथंचित् लागू पड़ता है; और दृष्टि अपेक्षा में कथंचित् लागू नहीं पड़ता है, सर्वथा लागू है। उस सर्वथा के साथ, सर्वथा का जब जन्म होता है, सम्यग्दर्शन का, तभी (सम्यक्) ज्ञान का भी साथ में जन्म हो जाता है, तो वो ज्ञान जानता है कथंचित्।

मुमुक्षु: ज्ञान जान लेता है।

पू. लालचंदभाई: ज्ञान जान लेता है कि यह पर्याय कथंचित् मेरे से भिन्न और कथंचित् अभिन्न। तो वो ज्ञान आ गया। ज्ञान में कथंचित् है और कथंचित् अनेकांत का द्योतक कहनेवाला स्याद्वाद। वो स्याद्वाद ज्ञान में है, अनेकांत ज्ञान में है; श्रद्धा में एकांत है, अनेकांत नहीं है, स्याद्वाद नहीं है (सिद्धांतों कि सरवाणी बोल ५)।

मुमुक्षु: सम्यक् एकांत है।

पू. लालचंदभाई: सम्यक् एकांत है। वही जैनदर्शन का रहस्य। बस एकांत-अनेकांत के बीच में रहस्य है। सम्यक् एकांत का जन्म होता है तब अनेकांत का जन्म साथ में होता है।

मुमुक्षु: निश्चय समझना पड़ेगा। व्यवहार समझने की कोशिश छोड़ दो।

पू. लालचंदभाई: पहले निश्चय समझो तो व्यवहार का ज्ञान अपने आप हो जाएगा।

मुमुक्षु: अपने आप होता है वो।

पू. लालचंदभाई: अपने आप, उसमें क्या? पुरुषार्थ करने की ज़रूरत नहीं है।

मुमुक्षु: .... तो उसमें ये निश्चय-व्यवहार का (एक) विषय है। ऐसा विचार आया था कि जैसे भाषा कोई बनती है ना भाषा। कोई भी भाषा नयी लिखी जाती है तो पहले भाषा बनती है। उसके बाद व्याकरण उसका बन जाता है, बनाया नहीं जाता। उसी तरह निश्चय पहले ख्याल में आता है तो उसका व्यवहार तो अपने आप चलता है, वह तो ज्ञान-वैराग्य है तो अपने आप वो सारा कार्य संतुलित हो जाता है और अपने आप सारा व्यवहार प्रगट हो जाता है। उस तरह से फिर किसी ने व्यवहार देखा वो व्यवहार शास्त्र में लिख दिया। उसमें कोई बात नहीं है। निश्चय सत्यार्थ होने पर व्यवहार अपने आप चलता है। व्यवहार तो पीछे-पीछे साथ रहता है, जाता ही नहीं है। १४वें गुणस्थान तक रहता है।

पू. लालचंदभाई: रहता है।

मुमुक्षु: उसकी कहाँ मना है? निश्चय ही, जो सर्वथा निश्चय है, उस पर्याय से जो भिन्न द्रव्य हूँ। जहाँ उस द्रव्य का अनुभव हुआ तो सारी पर्याय, सारा व्यवहार भले ही A, B, C ना जानते हों तो भी सब खिल जाता है।

पू. लालचंदभाई: (हाँ) ऐसा ही है।

मुमुक्षु: व्यवहार और निश्चय का भेद करना है तो उन्होंने मोक्ष की पर्याय को लेकर के आगे-पीछे की पर्याय की बात की। तो छठवें गुणस्थान को लेकर आगे-पीछे की पर्याय को.... तो वैसे निश्चय का ही जोर था उनका, वैसे व्यवहार का नहीं था। लेकिन वास्तविक तो यह है कि तुम व्यवहार को पकड़ते ही क्यों हो? व्यवहार में जाते ही क्यों हो? आपकी बुद्धि जाती क्यों है?

पू. लालचंदभाई: ये कहते हैं कि व्यवहार की तरफ आपकी नज़र क्यों जाती है? निश्चय पर क्यों

नहीं टिकते हो आप?

मुमुक्षु: हाँ! वो निश्चय थोड़ी न है। गुरुदेव के मार्ग में तो निश्चय ही है। व्यवहार तो समझ में आ जाता है। गुरुदेव ने कहीं भी व्यवहार को ...

पू. लालचंदभाई: कौन ना बोलता है? व्यवहार नहीं है ऐसा कौन बोलता है? अपने आप आ जाता है।

मुमुक्षु: अपने आप आ जाता है। उसको लाने की जरूरत नहीं है। जैसे आपको दृष्टि मिली है तो आपको संतुलनपना अपने आप समझ में आ जाता है। क्या जरूरत है ....

पू. लालचंदभाई: द्रव्य को जिसने जाना वो पर्याय को जानता है।

मुमुक्षु: जानता है। और वो द्रव्यों से उसकी हेयबुद्धि हो जाती है और सब .... वैसे ही सब बन जाता है। भले लक्ष्मी का ढेर लगा ले तो क्या करूँगा मैं?

पू. लालचंदभाई: कुछ नहीं।

मुमुक्षु: इनका ऐसा कहना है कि बिना मेहनत व्यवहार होता है तो व्यवहार के लिए मेहनत करने की क्या ज़रूरत है?

पू. लालचंदभाई: यही, इनका कहने का आशय यही है।

मुमुक्षु: निश्चय के पीछे व्यवहार है।

पू. लालचंदभाई: व्यवहार की सिद्धि के लिए पुरुषार्थ नहीं लगाओ। निश्चय समझो ऐसा पुरुषार्थ लगाओ। व्यवहार तो अपने आप खड़ा हो जाएगा।

मुमुक्षु: द्रव्य के बारे में सोचे।

पू. लालचंदभाई: पैसा पहले कमाओ, ब्याज तो अपने आप आ जाएगा।

मुमुक्षु: वो तो अपने आप बढ़ेगा। उसमें क्या? ब्याज भी, वो तो पैसा हो तो अपने आप बढ़ता है।

पू. लालचंदभाई: बस! अपने आप बढ़ता है।

मुमुक्षु: हाँ! वो तो उसको बढ़ाना नहीं पड़ता है। वो तो अपने आप circulate (घूमना) हो जाता है।

पू. लालचंदभाई: इधर द्रव्यदृष्टि हो गई, चौदह गुणस्थान आ जाते हैं, सहज में।

मुमुक्षु: उनकी एक बात आई थी उसमें कि गेंद को जोर से मारोगे तो गेंद हाथ में आएगी। धीरे से मारोगे तो कुछ नहीं आता।

पू. लालचंदभाई: क्या मारा?

मुमुक्षु: गेंद ball।

पू. लालचंदभाई: गेंद। Ball ball।

मुमुक्षु: आप क्या कहते हो?

पू. लालचंदभाई: Rebound (गेंद टकराकर वापस आ जाता है) हो जाएगा।

मुमुक्षु: हमने आपके कैसेट ना, गुरुदेव के कैसेट, इनके के कैसेट..... बीच में गुरुदेव के कैसेट

सुनते थे। तो साथ में मिलान करते थे कि ये बात कहाँ गड़बड़ पड़ रही है? कहीं गड़बड़ तो नहीं लग रही। हमने सब मिलान किया है साहब।

पू. लालचंदभाई: अच्छा! तो मिलान हो गया?

मुमुक्षु: हाँ! गुरुदेव की कैसेट रोज साथ में सुनते थे क्रमबद्धपर्याय .... की चर्चा हैं वो सुनीं उनकी कैसेट में। बीच में फिर कुछ १३ वीं गाथा की उसमें ही बात आती है। फिर उसमें ३२० गाथा के भावार्थ के अंदर में, उनको बराबर रखकर इनके कैसेट (को) बीच में रखकर सुनना फिर उसको सुनना। वहाँ पुरुषार्थ लगाया थोड़ा तो कोई काम। इनकी बात हमको इसलिए पसंद आई (क्यों)कि ये शुद्ध हिन्दी भाषी हैं। और गुरुदेव की बात मिठासमय है। इनकी बात में कड़कपन से बात आई सामने तो बात समझ में आ गई।

मुमुक्षु: और ये शुद्ध बात, शुद्धनय की ही बात करती हैं।

मुमुक्षु: वो कड़क नहीं है मगर बात कड़क तरीके से कहना चाहिए। आपका दिमाग भी छोटा नहीं है। ढीलापन में नहीं जमे। सुनता है, कड़क माल होता है ना। गाली देना पड़े दे दो। ठीक है!

मुमुक्षु: Shock treatment (झटके का उपचार) है, Shock treatment.

मुमुक्षु: Shock (झटका) देना चाहिए, बिजली की करंट की तरह दो।

... आप जो ... बहुत ... और ... जोरदार ... उससे भी ...।

पू. लालचंदभाई: सर्वथा भिन्न बिना कथंचित् लागू पड़ता नहीं है (सिद्धांतों कि सरवाणी बोल ७)। कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न इसमें निर्णय क्या आया? कोई निर्णय नहीं आया। इसमें पुरुषार्थ कुछ नहीं आया।

मुमुक्षु: घड़ी के लोलक जैसा रहा, दोनों बाजू फिरता है।

पू. लालचंदभाई: पर्याय कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न, इसमें आत्मलाभ क्या हुआ? कुछ नहीं।

मुमुक्षु: हाँ! निर्णय नहीं हुआ।

पू. लालचंदभाई: भिन्न है कि अभिन्न - तो निर्णय तो नहीं हुआ। ठीक है! कथंचित् भिन्न है कथंचित् अभिन्न है, भैया! परंतु इसमें निर्णय क्या हुआ?

मुमुक्षु: हाँ! मार्मिक बात है ये।

पू. लालचंदभाई: राग है, आत्मा से कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न, उसमें निर्णय क्या हुआ? आत्मलाभ क्या हुआ? वस्तु क्या है, भिन्न है कि अभिन्न? वस्तु भिन्न-अभिन्न है। आहाहा! गया! वो व्यवहार का पक्ष है, वो व्यवहार का पक्ष है। इसलिए आत्मा में स्याद्वाद नहीं है - ऐसा देवसेन आचार्य भगवान ने कहा, तो **भी निश्चयाभास होता नहीं है** (पृष्ठ ३१, नयचक्र), वो बात है।

मुमुक्षु: **स्यात् पद से रहित होनेपर भी उसमें निश्चयाभास होता नहीं है**।

पू. लालचंदभाई: आता नहीं। सर्वथा के बिना जीव को सम्यग्दर्शन नहीं होता है। कथंचित् वस्तु का निर्णय नहीं कराता, सर्वथा निर्णय कराता है कि देह से आत्मा सर्वथा भिन्न है; आठ कर्म से सर्वथा भिन्न है; राग से सर्वथा भिन्न है; केवलज्ञान की पर्याय से सर्वथा भिन्न है, भगवान आत्मा। चौदह गुणस्थान

से सर्वथा भिन्न है। सर्वथा भिन्न लाओ, बाद में कथंचित् भिन्न-अभिन्न का ज्ञान अपने आप, अपने आप हो जाता है। कौन ना बोलता है? ना नहीं बोलते हैं। हमको स्वीकार है परंतु पहले सर्वथा लाओ; सर्वथा के बिना कथंचित् आता नहीं है।

मुमुक्षु: ऐसे सोनगढ़ में ही घोटाला करते हैं।

पू. लालचंदभाई: सोनगढ़ में खुलासा होता (है), क्या घोटाला चलता है?

मुमुक्षु: कोई भी एक वस्तु प्रमाण का विषय बनाकर, ... करके छोड़ देते हैं और न द्रव्य हाथ में आता है और न पर्याय आती है। सर्वथा भिन्न ही है बस, यही माने तो सम्यग्दर्शन होता है और बाद में पर्याय का ज्ञान, नय का ज्ञान सबमें प्रमाण हो जाता है। Clear (स्पष्ट) होता है न! किसी को हमको द्वेष नहीं है ......अपना कल्याण करना है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! अपना कल्याण करना है।

देखो, सोना और लोहा, उसको (यदि) विशेष नहीं लेने में आए तो सामान्य तो पुद्गल है। ऐसे जीव सामान्य तो शुद्ध है। तो सामान्य कारण और विशेष कार्य ये जो ऐसा घटाओ, तो दोष आ जाए। क्योंकि जो सामान्य शुद्ध है तो उसका विशेष शुद्ध ही होना चाहिए; तो अज्ञान सिद्ध होता नहीं। इसलिए अज्ञान सिद्ध कब होता है? कि सामान्य कारण और विशेष कार्य नहीं है। नहीं तो-तो कारण जैसा कार्य जो घटाओ तो द्रव्य और पर्याय में, तो तो अज्ञान बैठता नहीं है, ज्ञान में बैठ जाता है। ज्ञान तो सादि है, अनादि नहीं है। और शुद्ध तो अनादि-अनंत है और ज्ञान तो सादि नया प्रगट होता है। तो ज्ञान के पहले क्या हुआ? तो कारण जैसा कार्य कहो - ऐसा नहीं लागू पड़ता है। पर्याय का कारण पर्याय है।

मुमुक्षु: पर्याय को कारण कौन?

पू. लालचंदभाई: अज्ञान है, एक समय की पर्याय; ज्ञायक कारण नहीं है।

मुमुक्षु: और ज्ञान का?

पू. लालचंदभाई: ज्ञान का कारण ज्ञान की पर्याय है, त्रिकाली द्रव्य कारण नहीं है।

ऐसा लिया है (समयसार, तात्पर्यवृत्ति टीका, जयसेनाचार्य) ३२० गाथा में, **कारण नहीं है। मोक्ष का कारण आत्मा नहीं है।** ऐसा न्याय दिया कि मोक्ष का कारण जो आत्मा हो तो आत्मा तो प्रथम से ही है, तो मोक्ष होना चाहिए सबका। तो मोक्ष का कारण आत्मा, भगवान आत्मा नहीं है - कर्ता भी नहीं है और कारण भी नहीं है। ऐसा लेवें तो दृष्टि का विषय हाथ में आए; बाद में ज्ञान में आओ। ज्ञान, सम्यग्ज्ञान हो जाता है, वो सम्यग्ज्ञान जानता है सब। सम्यग्दर्शन होता है तो सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान आता ही नहीं है। ११ अंग पढ़ डालो न, ज्ञान नहीं है, अज्ञान है वो; सम्यग्दर्शन के बिना का। सर्वथा का ठिकाना नहीं है तो कथंचित् कहाँ से आ गया?

'सर्वथा' शब्द समयसार में बहुत जगह पर लिया है। बहुत जगह पर, बहुत प्रकरण में, बहुत गाथायें हैं - सर्वथा, सर्वथा शब्द लिया है। नवतत्त्व से सर्वथा भिन्न है, इंद्रियज्ञान से सर्वथा भिन्न है, राग से सर्वथा भिन्न है। बहुत सर्वथा शब्द का प्रयोग किया है। बाकी दृष्टि का विषय, जो कथंचित् में रुक गया उसको दृष्टि का विषय हाथ में नहीं आता है, क्योंकि 'कथंचित्' प्रमाण का विषय हो गया। 'सर्वथा' नय

का विषय होता है। कथंचित् कर्ता और कथंचित् अकर्ता वो तो प्रमाणज्ञान का विषय आ गया। सर्वथा अकर्ता है और कर्ता नहीं है - इसका नाम अनेकांत है। नय का अनेकांत जुदा और प्रमाण का अनेकांत जुदा है। प्रमाण का अनेकांत तो जानने के लिए है; नय का अनेकांत प्रयोजन सिद्ध करने के लिए है।

मुमुक्षु: भेदज्ञान के लिए है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! द्रव्य में पर्याय (नहीं है); द्रव्य द्रव्यरूप है और पर्यायरूप नहीं है। वो सम्यक् एकांत की सिद्धि उसमें होती है, नय से। बाद में अनुभव हुआ कि वस्तु द्रव्य-पर्याय स्वरूप है। हाँ है! तो वो अनेकांत हो गया, प्रमाण का अनेकांत हो गया। प्रमाण के अनेकांत में द्रव्य-पर्याय स्वरूप पूरी वस्तु आती है और नय में (ऐसा है कि) द्रव्य में पर्याय नहीं है। नयपूर्वक प्रमाण होता है; प्रमाणपूर्वक नय नहीं होता है।

जब अनुभव-सम्यग्दृष्टि का जन्म होता है न, होता है, तब नयपूर्वक प्रमाण होता है; प्रमाणपूर्वक नय नहीं होता है। सविकल्प प्रमाण में आकर व्यवहार का निषेध करे उसमें, पर्याय मेरी नहीं है, पर्याय मेरे में नहीं है; पर्याय दिखती नहीं है। कर्ता तो नहीं है, मेरी तो नहीं है, मगर मेरे को पर्याय दिखती (ही) नहीं है। अभेद में भेद दिखता नहीं है। आहाहा! एक सर्वोपरी तत्त्व चैतन्य परमात्मा दिखता है। कोई चौदह गुणस्थान का भेद दिखता नहीं है क्योंकि पुरुष से भेद भिन्न हैं, आत्मा से भेद भिन्न हैं। इसलिए जब पुरुष को देखता है उसको भेद दिखाई नहीं देते हैं, अभेद में भेद दिखाई नहीं देते हैं, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान होता है, वो भेद को जान लेता है, भेद हैं बस।

मुमुक्षु: ज्ञान की पर्याय जाएगी कहाँ?

पू. लालचंदभाई: हाँ! जानेगी।

मुमुक्षु: वो तो जानेगी। कहाँ जाएगी? वो तो वहीं पड़ी है ना, वहीं जानेगी।

पू. लालचंदभाई: सम्यग्दर्शन के साथ ही जन्म होता है सम्यग्ज्ञान का। तो वो ज्ञान द्रव्य को द्रव्यरूप जाrनता है, पर्याय को पर्यायरूप जानता है। बस!

सर्वथा और कथंचित् में सब -सारा रहस्य है।

मुमुक्षु: श्रद्धा में तो सर्वथा है ही परंतु ज्ञान में भी ....

पू. लालचंदभाई: शुद्धनय, शुद्धनय में सर्वथा है। शुद्धनय जो लो साथ में तो सर्वथा है। मगर जब सम्यग्दर्शन का विषय चलता है उसमें सर्वथा भिन्न है, तो उसमें शुद्धनय से सर्वथा भिन्न आ गया, विभाग में। समझे? मगर जब दृष्टि अपेक्षा से सर्वथा भिन्न है तो ज्ञान अपेक्षा से कथंचित् भिन्न-अभिन्न, तो शुद्धनयपूर्वक जो ज्ञान प्रगट होता है प्रमाणज्ञान, वो बात उसमें आ गई। उसमें शुद्धनय का विषय और श्रद्धा का विषय एक है। शुद्धनय का विषय और श्रद्धा का विषय दो जुदा नहीं हैं, एक हैं। जो त्रिकाली द्रव्य ज्ञायक है वो ही शुद्धनय का विषय है और श्रद्धा का विषय वही है। जब शुद्धनय प्रगट होता है तो साथ में उस पर्याय का ज्ञान करनेवाला एक व्यवहारनय भी प्रगट होता है क्योंकि ज्ञान सविकल्प है। ज्ञान में दो पड़खे बनते हैं, श्रद्धा में दो पड़खे नहीं बनते।

शुद्धनय का विषय और दृष्टि का विषय एक है, उसमें फ़र्क नहीं है। मगर शुद्धनय का विषय

जो सामान्य आया - वो सामान्य मैं हूँ ऐसा शुद्धनय से जाना, तो उसके साथ जो आनंद का परिणाम प्रगट हुआ उस ही समय, उस आनंद को जाननेवाला ज्ञान भी प्रगट हो गया उस ही समय में। उस आनंद की पर्याय को जाननेवाला ज्ञान प्रगट हुआ, उसका नाम व्यवहार है। अंदर का निश्चय और अंदर का व्यवहार प्रगट होता है निर्विकल्पध्यान में।

मुमुक्षु: अंदर का स्वपरप्रकाशक?

पू. लालचंदभाई: हाँ! अंदर का स्वपरप्रकाशक। पर्याय को जाननेवाला ज्ञान प्रगट होता है। द्रव्य को जाना तो पर्याय को जाननेवाला ज्ञान भी साथ में प्रगट होता है। आनंद आया उसको जानता है ज्ञान। आनंदमूर्ति को जाना तो आनंद को जाननेवाला ज्ञान भी प्रगट हो जाता है। जो आनंद प्रगट हुआ ना, वो आनंद प्रगट हुआ उसको समझो ज्ञान ने जाना नहीं, तो सविकल्पदशा में, मेरे को सम्यग्दर्शन हुआ किसको पूछे? कौन जाने? कि नहीं ज्ञान ने बता दिया। ज्ञान ने क्यों बता दिया? कि आनंद की पर्याय को ज्ञान ने जान लिया था। आनंदमूर्ति को तो जाना और आनंद पर्याय को भी जाना तो सविकल्प में कहा कि आज भव का अंत आ गया। ऐसा आनंद की पर्याय को ज्ञान जानता नहीं है बिल्कुल, सर्वथा - ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु: पर्याय को जानता है तो भी पर्यायदृष्टि नहीं होती है?

पू. लालचंदभाई: नहीं होती है क्योंकि पर्याय में आत्मबुद्धि नहीं है, पर्याय का लक्ष नहीं है। द्रव्य का लक्ष छूटता नहीं है और पर्याय का ज्ञान रह जाता है। द्रव्य का लक्ष छूटे नहीं और पर्याय का ज्ञान हो जाता है। इसमें क्या है? पर्याय का ज्ञान करने में पुरुषार्थ नहीं है, द्रव्य का ज्ञान करने में पुरुषार्थ है। वो तो सहज परिणाम को जानता है ज्ञान। उसमें क्या है? उसके लिए पुरुषार्थ नहीं बनाता है।

मुमुक्षु: अंदर में घुसने के लिए पुरुषार्थ चाहिए?

पू. लालचंदभाई: द्रव्य स्वभाव को जानना वो अनंत पुरुषार्थ है भैया! पर्याय को जानने में पुरुषार्थ कहाँ है? सहज में वो जानता है।

कुंदकुंद भगवान की जो वाणी, ऐसी ही वाणी गुरुदेव की है। बस! प्रमत्त-अप्रमत्त से रहित भिन्न ज्ञायक मैं हूँ। उसमें कथंचित् भिन्न नहीं लिखा। भिन्न है। प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है आत्मा में। बोलो! **नहिं अप्रमत्त प्रमत्त नहीं, जो एक ज्ञायक भाव है** (समयसार गाथा ६)। आहाहा! कि आत्मा एकरूप है, १४ रूप नहीं। प्रमत्त-अप्रमत्त जो चौदह गुणस्थान हैं वो स्वांग हैं। स्वभाव कहाँ है आत्मा का। अरे! एक अपेक्षा से वो कर्मजन्य भाव है। कर्म के सद्भाव और अभाव की अपेक्षा आती है, सापेक्ष हो गया। भगवान ज्ञायक तत्त्व निरपेक्ष है; कर्म से तो निरपेक्ष है मगर चौदह गुणस्थान से भी निरपेक्ष है। वो मैं हूँ। बस! उसमें अनुभूति होती है।

गुरुदेव की वाणी फिरनेवाली नहीं है।

मुमुक्षु: नहीं है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! जिसकी लायकात न हो उसको न बैठे। न बैठे तो न बैठे। मगर सत् कहीं फिरता है? तीन काल में सत् तो एकरूप रहता है। आत्मा का रूप बदलता ही नहीं है तीनों काल, एकरूप ही आत्मा है, बहुरूपी नहीं है।

ये ज्ञानी की वाणी है न, वाणी, ये बाँझ नहीं होती है। समझ में आया?

मुमुक्षु: बराबर!

पू. लालचंदभाई: समझ में आया? ज्ञानी की जो वाणी छूटती है, कोई न कोई पात्र जीव...

मुमुक्षु: पकड़ता ही है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! पकड़ता ही है।

मुमुक्षु: बाँझनी का मतलब समझते नहीं हैं।

मुमुक्षु: बाँझ नहीं होती है। बाँझ नहीं होती है ज्ञानी की वाणी। कोई न कोई उसमें से प्राप्ति.... कोई न कोई प्राप्ति

पू. लालचंदभाई: कोई न कोई जीव प्राप्त कर लेता है। यानि बेकार नहीं जाती है वाणी।

मुमुक्षु: वाणी खिरती ही नहीं है अगर बेकार जाए तो।

पू. लालचंदभाई: हाँ! तो खिरे ही नहीं। खिरती है तो मालूम होता है कि कोई ग्रहण करनेवाला बैठा है। ऐसा ही योगानुयोग निमित्त-नैमित्तिक संबंध बन जाता है।

भगवान महावीर की वाणी ६६ दिन नहीं खिरी क्योंकि कोई झेलनेवाला नहीं था। जहाँ गणधर भगवान आए गौतम, वाणी की मूसलाधार छूटी। आहाहा! उनका तो काम हुआ और उनके निमित्त से कई जीवों को प्राप्ति हो गई। आहाहा! वाणी बेकार नहीं जाती है, कोई जीव सभा में ग्रहण करनेवाला, लायक भव्य प्राणी, उस सभा में बैठा ही है।

सर्वथा और कथंचित् में मर्म है। सारे जिनागम का सार: सर्वथा नंबर- १, कथंचित् नंबर- २।

मुमुक्षु: दृष्टि के विषय में सर्वथा और ज्ञान के विषय में कथंचित्।

पू. लालचंदभाई: भले हो! कोई बात नहीं। हो तो हो, कौन ना बोलता है? कौन ना बोलता है? एकांत को जानते-मानते हैं? कि हाँ! हम अनेकांत को जानते हैं। तुम एकांत को जानते हो? बोलो! हमारा प्रश्न है। आपके प्रश्न में हमने हाँ बोला। हें? कि आत्मा अनेकांतमयी है? कि हाँ! अभी मेरा प्रश्न सुनो कि आत्मा एकांतरूप है? कि नहीं है। झूठ है बात, जा!

मुमुक्षु: क्योंकि सर्वथा अनेकांतरूप नहीं है; अनेकांत भी अनेकांतरूप ही है।

पू. लालचंदभाई: **अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाण-नय-साधनः** (स्तोत्र-त्रयी, स्वयंभूस्तोत्र श्लोक नं. १०३) प्रमाण से अनेकांत की सिद्धि नहीं होती है; प्रमाण और नय से अनेकांत की सिद्धि होती है। नय को छोड़ दो, अकेले प्रमाण से अनेकांत की सिद्धि करो, तीन काल में नहीं होती है। मिथ्या अनेकांत हो जाता है। नयपूर्वक प्रमाण होता है। अनेकांत की सिद्धि के लिए भी नय का सहारा लेना चाहिए।

जैसे झाड़ है, वृक्ष। जैसे वृक्ष है ना वृक्ष। उसके अंदर पत्ता है, पान - हरा, डाली है, फल है, ऐसे बहुत हैं। सारे ये अनेकांतरूप हैं, सारा, प्रमाणज्ञान का विषय। ठीक है? वो प्रमाणज्ञान का विषय सिद्ध कब होता है? जब एक-एक पत्ते को देखो, इस पत्ते में दूसरे पान का अभाव है, इस पत्ते में दूसरे पत्ते का अभाव है। तो एक-एक नय से एक-एक पत्ते को देखो, युगपद् अनेक पत्तों को देखो तो प्रमाण होता है। मगर एक पत्ते को देखे बिना प्रमाणज्ञान की सिद्धि नहीं होती है। और प्रमाणज्ञान में हेय-

उपादेय नहीं है; नय ज्ञान में हेय-उपादेय है। प्रमाण पूज्य नहीं है; निश्चयनय पूज्य है।

उसमें गुरुदेव की वाणी फिरनेवाली नहीं है, बस। जो लायक है उसको बैठ जाता है। जिसकी होनहार नहीं हो, उसको क्या करे कोई? कोई क्या (करे)?

मुमुक्षु: कोई क्या करे?

पू. लालचंदभाई: कोई क्या करे?

मुमुक्षु: दूसरा तो क्या करे?

पू. लालचंदभाई: कोई क्या करे? बस! जानो कि अभी उसका काल नहीं पका है। बस जानो। दूसरा क्या? अपनी मर्यादा क्या? जानो, बस! आज नहीं समझता है, कल समझ जाएगा। वो भी आत्मा है भगवान, बस। उसकी चिंता क्यों करें हम?

ऐसा **अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाण-नय-साधनः** उसके अंदर ये चार का लागू ... किया है। भगवान (तीर्थंकर) महावीर और उनका सर्वोदय (तीर्थ) वो.....

मुमुक्षु: डॉक्टर भारिल्ल।

पू. लालचंदभाई: हाँ! हाँ! डॉक्टर भारिल्ल, उसमें।

मुमुक्षु: वो आपने जयपुर में लिया था, अनेकांत भी अनेकांत। उनको अच्छी, बहुत अच्छी लगी थी वो (बात)। सर्वथा अनेकांतवादी नहीं है जैनदर्शन।

पू. लालचंदभाई: नहीं है। **अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः** अनेकांत भी अनेकांतरूप है, एकांतरूप नहीं है। ये कोई समझे ही नहीं कि ये क्या!

मुमुक्षु: कैसी बात है ये! सर्वथा अनेकांतवादी, ये भी एक एकांत है।

पू. लालचंदभाई: एकांत हो गया। ऐसा अनेकांत का स्वरूप नहीं है। अनेकांत को ही माने द्रव्य-पर्याय स्वरूप वस्तु अनंत धर्मात्मक, तो वो तो अनेकांत ही नहीं रहा, मिथ्या अनेकांत हो गया।

मुमुक्षु: ओहो! सम्यक् एकांत पूर्वक सम्यक् अनेकांत होता है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! और श्रीमद् जी ने एक लिखा है **अनेकान्तिक मार्ग** (ज्ञान) **भी सम्यक् एकांत ऐसे निजपद की प्राप्ति कराने के सिवाय दूसरे किसी अन्य हेतु से उपकारी नहीं है** (श्रीमद् राजचन्द्र वचनामृत पत्र ७०२)। समझो द्रव्य-पर्याय स्वरूप वस्तु में आ गया जीव, तो उसमें साध्य की सिद्धि नहीं होती है। अनेकांत का ज्ञान हुआ मगर आत्मा का ज्ञान नहीं हुआ। अनेकांत का अज्ञान हो गया, ज्ञान नहीं हुआ अनेकांत का। अनेकांत का अज्ञान हो गया। अनेकांत का पक्ष आ गया ना, तो अज्ञान हो गया; ज्ञान नहीं हुआ। अच्छा! अनेकांत में आने पर भी अज्ञान रह जाता है? कि हाँ! तो अभी क्या करना? कि अनेकांत में से एकांत निकालो। पर्याय को गौण करो, द्रव्य स्वभाव को निकालो। द्रव्य स्वभाव मैं हूँ - अविनाशी मैं हूँ; नाशवान पर्याय मेरी चीज नहीं है। अनेकांत में से एकांत निकालो बाद में जो अनेकांत हो गया, वो प्रमाणज्ञान बराबर है।

मुमुक्षु: माने नयपूर्वक ही प्रमाण होता है।

पू. लालचंदभाई: होता है, नियम से। नियम से।

मुमुक्षु: बात एकदम यथार्थ है।

पू. लालचंदभाई: नय के बिना प्रमाण नहीं होता है क्योंकि अनेकांत की सिद्धि में दो बात लीं सिद्ध करने के लिए – प्रमाण, नय दो साधन हैं। अकेले प्रमाण से अनेकांत की सिद्धि नहीं होती है; दो साधन हैं अनेकांत की सिद्धि करने के लिए - प्रमाण और नय। दो साधन से अनेकांत की सिद्धि होती है।

मुमुक्षु: केवल प्रमाण से नहीं?

पू. लालचंदभाई: नहीं। जैसे ये सारा शरीर है, प्रमाणज्ञान का विषय, समझो! ये अवयव बहुत हैं इसमें, प्रमाणज्ञान का विषय है। मगर वो नय के द्वारा ये दायाँ हाथ, ये बायाँ हाथ, ये दायाँ पाँव, ये दायी आँख, ऐसे प्रत्येक प्रकार से आप एक-एक धर्म को, एक-एक धर्म को क्रम-क्रम से देखकर एक-एक धर्म की सिद्धि करो, फिर युगपद् सबको देखो तब अनेकांत होता है। परंतु अकेला तुम ये अनेकांत-अनेकांत तो हम कहें बायाँ हाथ कि दायाँ हाथ, तो उसकी खबर नहीं। शरीर को है, मैंने तो शरीर को देखा। तो ये अनेकांत झूठा है तुम्हारा। ऐसा है। बायें हाथ की खबर नहीं, दायें हाथ की खबर (नहीं); फिर अनेकांत कहाँ से प्रगट हुआ? कि द्रव्य-पर्याय को देखा है, द्रव्य कैसा है खबर है? वो खबर नहीं। पर्याय कैसी है ये खबर? वो खबर नहीं। अनेकांत कहाँ से आया? द्रव्यदृष्टि हुए बिना .....

मुमुक्षु: हर-एक को देखना पड़ेगा।

पू. लालचंदभाई: हाँ! फिर युगपद् सभी धर्मों को देखे तब प्रमाणज्ञान होता है।

पर्याय को देखना बंद कर और द्रव्य को देख, ये सम्यक् एकांत हो गया। फिर द्रव्य-पर्याय दोनों को देख अनेकांत हो गया।

ये जयसेन आचार्य भगवान ने समंतभद्र आचार्य का श्लोक रखा है **अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः** बहुत अच्छी बात है, मीठी शक्कर जैसी। प्रमाण का पक्ष छूट जाए, नय के पक्ष में आ जाए, पक्षातिक्रांत हो जाए; तब प्रमाणज्ञान का ज्ञान हो जाये। ये ऐसी लाइन है।

आशीष का चेहरा देखते हैं किशोरभाई! समझ गए? मुँह ढँका हो तो किशोर नहीं दिखता, किशोर नहीं, अरे आशीष। अभी आशीष का मुख देखा ये सम्यक् एकांत हो गया; और पूरा शरीर (देखा कि) अरे! ये तो आशीष है - ये अनेकांत हुआ। आशीष का चेहरा देखे बिना आशीष को नहीं पहचान सकते। चेहरा देखो तुम। ऐसे ज्ञायक को देखो तुम, बाद में उसके परिणाम जानने में आते हैं।

मुमुक्षु: दूसरे भाग को देखो तो आशीष को confirm नहीं कर सकते।

पू. लालचंदभाई: नहीं कर सकते, १०० टका आप। हाँ!

मुमुक्षु: ...... चेहरा देखने के बाद ही confirm (निश्चित) हो गया कि ये आशीष है। बराबर!

पू. लालचंदभाई: हाँ! ऐसे आत्मा को देखो पहले; बाद में उसके परिणाम का ज्ञान सम्यक् होगा। आत्मा को देखने के सिवाय परिणाम का ज्ञान अज्ञान है। आशीष को देखना हो तो पहले चेहरा देखो कि हाँ ये आशीष आया। उसके बिना आपने कैसे नक्की किया भाई? कि हाथ से? पैर से? कपड़े से? कपड़े तो उसके जैसे दूसरे ने भी पहने हैं, आशीष के साथ। कपड़े से आशीष का निर्णय नहीं हो सकता। हाथ से निर्णय नहीं हो सकता, उसके boot (जूते) से निर्णय नहीं होता, उसकी चाल से निर्णय नहीं होता।

मुमुक्षु: आशीष लड़के का नाम है।

पू. लालचंदभाई: लड़के का नाम है आशीष। चेहरा ढाँक दो उसका, तो ये दोनों ही ऐसे आयें, कि ये भी आशीष, ये भी आशीष? कि आपके दो लड़के हैं आशीष? दो तो नहीं हैं। तो उसमें आशीष कौन है आप पहचान सकते हैं? कि चेहरा खोलो तो मैं बताऊँ। चेहरा खोल दिया दोनों का। अरे! ये आशीष है और ये आशीष नहीं है। तो आशीष के चेहरे से आशीष (की पहचान) हो गई। तो सारी देह को भी प्रमाण से आशीष, सारा आशीष है। कोई भाग आशीष बिना का नहीं है। सब भाग में आशीष व्यापक है।

मुमुक्षु: चेहरा देख लिया तो बाकी का भी (ज्ञान हुआ कि) आशीष है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! सारा शरीर आशीष है। बोलो!

मुमुक्षु: कमाल कर ...। द्रव्य को देख ले।

पू. लालचंदभाई: द्रव्य को देख ले।

मुमुक्षु: प्रमाणज्ञान में .. सब अंदर आ जायेगा।

पू. लालचंदभाई: अंदर आ जा। एक आत्मा को जाना सब जान लिया। अनंत गुण जान लिए, अनंत पर्यायें जान लीं, अनंत अपेक्षित धर्म जान लिए, सब जान लिया।

मुमुक्षु: जैसे ये सूर्य है ना सूर्य। सूर्य को देखने से उसमें अनंत किरणें छूटती हैं, अनंत।

पू. लालचंदभाई: बस! जान लेता है।

मुमुक्षु: सूर्य देखने से उसका ज्ञान हो जाता है।

पू. लालचंदभाई: बस! निश्चय को जानो तो व्यवहार - किरण को जानता है, अपने आप। आत्मा को जानो, प्रथम आत्मा को जानो। बस! उसके भेद-प्रभेद तो स्वयं जानने में आ जाता है। उसमें पुरुषार्थ नहीं है। भेद को जानने में पुरुषार्थ नहीं है, अभेद को जानने में पुरुषार्थ है।

चेहरे को जाने बिना तुम लाख रुपया बैंक में भरने के लिए नहीं भेजोंगे उसको। चेहरा खोल तू, आशीष है कि नहीं ये देख लूँ। उसके बाद मैं तुझे बैंक में भेजूँ।

मुमुक्षु: नहीं तो जोखम बड़ा ...... नुकसानी है।

पू. लालचंदभाई: नुकसानी है। चेहरे से ही नक्की होता है। चेहरा से ही उसकी पहचान होती है कि ये किशोरभाई हैं, ये कश्मीरीलाल जी हैं, ये बकुलभाई हैं। चेहरे से दिखता है। केवल हाथ-पैर से निर्णय नहीं होता।

मुमुक्षु: कपड़े से निर्णय हो तो white (सफेद) कपड़ा भी पहनते हैं।

पू. लालचंदभाई: हाँ! तीनों white कपड़े पहनें हैं।

एक घर में चार लड़के हैं तो चारों लड़कों की एक-एक पत्नी हैं। समझ गए? एक जैसी height (ऊँचाई) और एक जैसे कपड़े पहनें हों, घूँघट डालकर। समझ गए? तो कहें कि भाई चेहरा दिखाओ तो खबर पड़े कि ये इस लड़के की पत्नी, वो उस लड़के की पत्नी। नहीं तो मुश्किल हो जाएगी। चेहरा देखे बगैर कैसे (निर्णय) करें? आहाहा! ऐसे पर्याय को.... पर्याय से ढँक गया है घूँघट में। पर्याय को जरा दूर कर। आहाहा! ये तो मैं भगवान आत्मा हूँ वाह!

हो गया टाइम।

मुमुक्षु: अनेकांत की सिद्धि नय और प्रमाण पूर्वक होती है ये चर्चा बहुत अच्छी न्याय आया।

पू. लालचंदभाई: हमारे आशीष और किशोर समझ गए?

मुमुक्षु: द्रव्य को जाने बिना प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। प्रमाणज्ञान से देखेगा तो जीव नहीं दिखेगा।

पू. लालचंदभाई: कोई निर्णय ही नहीं होगा। यह भी आत्मा, और ऐसा भी आत्मा, और ऐसा आत्मा, और ऐसा आत्मा, और ऐसा आत्मा।

मुमुक्षु: निश्चय से भाई शुरुआत होती है। विशेष सत् है, सामान्य को उसकी अपेक्षा नहीं।

पू. लालचंदभाई: नहीं। विषेश को देखना बंद कर, तू सामान्य को देख ले। सामान्य को देखने के बाद ये सब उसकी पर्यायें हैं - ऐसा ज्ञान हो जाएगा। ज्ञान-दर्शन-चारित्र-सुख-वीर्य उसके परिणाम जीव के परिणाम हैं, ऐसा ख्याल में आ जाएगा।

जीव एक प्रकार का है, परिणाम अनेक प्रकार के हैं; जीव अनेक प्रकार का नहीं, जीव एक प्रकार का है। जीव एक प्रकार का है, परिणाम अनेक प्रकार के हैं; जीव अनेक प्रकार का नहीं होता।